International Journal of Advance and Applied Research
www.ijaar.co.in
ISSN – 2347-7075 Impact Factor – 7.328
Peer Reviewed Bi-Monthly
Vol.11 No.4 March – April 2024

समकालीन कहानियाँ: चुनौती एवं मानवीय भूमिका

डॉ. शोभा एम्. पवार
सहयोगी प्राध्यापक,हिंदी विभाग,
श्रीमती सी.बी.शाह महिला महाविद्यालय,सांगली
Corresponding Author - डॉ. शोभा एम्. पवार
DOI - 10.5281/zenodo.10940727

प्रस्तावना:

मानव की भूमिका केवल मनुष्य तक ही सीमित नहीं होती है बल्कि वह पूरी सृष्टि के लिए होती है. मनुष्य द्वारा, मानव के लिए किया जाने वाला सद्भावनापूर्ण कार्य जो हम करतें हैं वही मानवता है .इसके द्वारा समाज में भावात्मक एकता का प्रसार होता है और जिससे सामाजिक व्यवस्था बनती है .आज के रचनाकारों ने समाज की इन्ही आयामों को अच्छी तरह समझा है ,इंसान के दुख-दर्द ,धर्म,राष्ट्र,जाति,खेत खलिहान,इंसानियत मज़बूरी को महसूस किया है, उसे परखा है .आज के ग्राम्य-जीवन की सस्कृति,लोक-राग ,परंपरा तथा मानवीय करुणा को यथार्थता के धरातल पर चित्रित किया गया है, अभिव्यक्त किया गया है. शहर से लेकर ग्राम्य-जीवन का कोई भाग रचनाकारों से छूटा नही रह जाता है.

हमारी पुरानी भारतीय संस्कृति तो संकर हो चुकी है .मानवता ,मित्रता ,सौहार्दता और प्रेम इत्यादि का स्वरुप भी पूरा बदल चुका है .इसका स्वरूप और अवधारणा बदल चुकी है . कहना होगा कि वर्तमान में इस तरह का बदलाव एवं ऐसी मानसिकता का एक कारण संचार माध्यम का अतिरेक प्रयोग होना है.यह इतना अधिक परिवार में घुस चुका है कि आपसी रिश्तों को भी खा गया है .इस लेख में मैंने समाज के बदलते रूप के कारण हमारी बदलती हुई भूमिका तथा मानसिकता को व्यक्त करने का प्रयास किया है.इसमें मानवीय भूमिका ढूढने की कोशीश भी की गई है. कहना न होगा कि इन सारी स्थिति का चित्रण कहानियों में हमें परिवार के माध्यम से सहज रूप से मिलता है.

मनोहर जमदाडे की 'मुफ्त की कीमत' कहानी में परिवार में माँ बाप अपने बच्चों के लिए सबकुछ बिना स्वार्थ करतें है. बदले में उनसे कोई अपेक्षा भी नहीं होती है.परन्तु प्रकृति के प्रति हम ऐसावाला रवैया नहीं अपना सकते.उसके प्रति मानवीय मूल्य का पालन नहीं करेंगे तो हमारी अगली पीढ़ी खुद नष्ट हो जाएगी.यह संदेश इस कहानी में मिलता है.लेखक लिखते हैं - "स्कूल अभी-अभी शुरू हुआ था. पांचवी कक्षा की क्लास थी. अध्यापक का भी स्कूल में पहला दिन था. बच्चों के चेहर पर कौतूहल मिश्रित उत्साह दिखाई दे रहा था. पहले ही दिन पाठ्यक्रम को शुरू करने से

अच्छा बच्चों के साथ कुछ संवाद किया जाए तो वे जरा तनावमुक्त हो जाएंगे, यह सोच अध्यापक छात्रों को एक विषय पर अपने विचार रखने को कहते हैं. विषय था- 'मुफ्त की कीमत' रमेश खड़ा होकर कहता है- 'हमारे घर में मां बहुत परिश्रम करती है. हमारा 'भोजन में मदद करना. सब मुफ्त होता है पर हमारे लिए उसकी कोई कीमत नहीं होती.! खाना बनाना, कपड़े धोना, हमें पढ़ाई में मदद करना.सब मुफ्त होता है पर हमारे लिए उसकी कोई कीमत नहीं होती. सोहम कहता है- 'हमारे पिताजी नए-नए कपड़े लाते हैं, खिलौने लाते हैं, मिठाई लाते हैं. सब मुफ्त में मिलता है. पर हमारे लिए उसकी कोई कीमत नहीं होती.'

पवन उठकर कहता है- 'हमें प्रकृति क्या नहीं देती? पेड़ों से हमें फल मिलते हैं, फूल मिलते हैं, लकड़ियां मिलती हैं, ऑक्सीजन मिलता है. पेड़ों के कारण अच्छी बारिश होती है. बारिश से हमें पीने के लिए, खेती के लिए, पेड़ों के लिए पानी मिलता है. नाले, नदियां बहकर हमारे जीवन को समृद्ध करते हैं. समंदर से नमक और मछलियां मिलती हैं. बाग-बगीचे हमें आनंद देते हैं. पेड़, पर्वत, पहाड़, नदियां, जंगल, खेत-खलियान हमें क्या नहीं देते. सबसे बड़ी बात प्रकृति हमें देने का संस्कार सिखाती है और वह भी मुफ्त में, पर हम प्रकृति को क्या देते हैं?'- इतना कह पवन अपनी जगह बैठ जाता है. पूरी क्लास निःशब्द थी.'' १

कहना न होगा कि समय रहते इस चुनौती को नहीं समझ पाएंगे तो पूरी धरती वीरान हो जाएगी.यह सच है कि मुफ्त की कोई कीमत नहीं होती,मेहनत से मिला हुआ हर चीज अनमोल होता है.इस प्रकार की कहानियाँ बहुत सहज और सुंदर ढंग से सबकुछ कह जाती है.

ज्ञानदेव मुकेश की 'कमजोर सिग्नल' बड़ी ही सवेदनात्मक कहानी है आज की एक बड़ी आवश्यकता कह सकते हैं और वह है- फ़ास्ट वाय-फाय का मिलना.और जिसके कारण रिश्ते-नाते दूर होते जा रहे हैं .बेटा माँ-बाप को समय नहीं दे पा रहा है.आजकल तो इंटरनेट के कारण स्थिती अजीब बनती जा रही है.बच्चे हो या नवजवान हर कोई इसमें लगा हुआ है.न खाने-पीने की सुध है न ही पढाई की.पता नहीं यह चीज हमें कहाँ ले जाकर छोड़ेगी.आजकल के शिशु तक इसके जाल में अटके बैठे हैं.ऐसे में बूढों की ओर किसी ध्यान ही नहीं जाता है.वैसे भी परिवार से इन्हें एसे नदारद कर दिया गया है जैसे ये किसी दूसरे ग्रह के निवासी हों . कदम-कदम पर यह चुनौती बनी खड़ी है.

लेखक लिखते हैं - 'बूढ़े पिता रात की घटना से खिन्न थे. वे देर रात तक डाइंगरूम में सोफे पर बैठे रहे और बेटे को पास आकर बैठने का आग्रह करते रहें मगर बेटा ऑनलाइन काम का बहाना कर अपने कमरे में बैठा रहा.कल उसने खाना भी अलग से खा लिया था .आज सुबह पिता हाथ में अखबार लेकर सोफे पर उदास बैठे थे.सुबह के आठ बज गए थे. यह उनके बेटे के उठने का समय था .उन्हें अपने बेटे की कल की कही हुई बात याद आ गई थी. बेटे ने उलाहना दिया कि आप हमेशा हाथ में अखवार पकड़े रहेंगे तो आपसे में क्या बात करूंगा. पिता ने अपनी भूल स्वीकार की थी . वैसे पिता खुश थे कि बेटा उनके सामने बैठा है. मगर उन्हें बेटे की परेशानी देखी नहीं जा रही थी. उन्होंने पूछा, 'बेटा, क्या कोई परेशानी है. बेटे ने सिर झुकाए

हुए खिन्न स्वर में कहा, 'वाईफाई ठीक से काम नहीं कर रहा है. राउटर के पास बैठकर ही काम रहा हूं. मैंने शिकायत दर्ज करा दी है. उसने कहा, जब तक सिग्नल ठीक नहीं हो मगर सिग्नल यहां भी ठीक से काम नहीं कर रहा.' पिता समझ गए कि बेटा उनके पास नहीं बल्कि राउटर के पास आकर बैठा है. और वे दुखी हो गए, तभी बेटा चहकने लगा. उसने कहा, सिग्नल फास्ट हो गया। अब में अपने कमरे में जाता हूं .वहाँ इत्मिनान से अपना काम कर लूंगा.' पिता को लगा जैसे हाई फाई फिक्वेंसी की कोई आंधी आई है जो इस पीढ़ी को लेकर उड़ती जा रही हो, जिसमें दुनिया भर की तरक्की है, रौनक है, चकाचौंध है. और हम घर के अंदर बैठे कमजोर सिग्नल के लोग गांव, कस्बों और चौपाल की बातें, खेती-किसानी और घरेलू उपचार के तरीके तक ही सीमित रह गए, पिता समझ गए यह विज्ञान की करतूत है और हम इसी कमजोर सिग्नल के कारण बच्चों से दूर हो गए।'२

कहना सही होगा कि इंसान की अनचाही जरूरतों ने ही उसे बर्बाद करके रख दिया है .वह अब चाहकर भी इससे बाहर नहीं निकल सकता है. इसके अलावे भी कई ऐसी चीजे हैं ,किस –किस को गिनाया जाए.विवाह को लेकर-सुंदर हो या कुरूप ,नौकरीपेशा हो या नहीं हो ,परवरिश को लेकर,पढाई को लेकर,ऐडमिशन को लेकर और न जाने कितनी चुनौतियों है.जीवन खुद एक प्रश्न चिन्ह बन गया है किसी को किसी के लिए वक्त ही नहीं हैं .सभी अपने आप में सिमटे हुए हैं. यह स्थिती एक समस्यां का रूप धारण कर चुकी है जिसका इलाज संभव नहीं है.यह दो पीढ़ी के अंतर की बात नहीं बल्कि वर्त्तमान के **AI** 'कृत्रिम बुद्धिमत्ता' के कारण चपेट में आए नई पीढ़ी की ऐसी लाईलाज स्थिति है जिसे हम महसूस करके भी भोगने के लिए मजबूर हो जाते हैं.समाज मनुष्य के लिए एक महाजाल की तरह है.जिसमे उसे अनेक घटनाओं,परिस्थितियों और विसंगतियों से गुजरना पड़ता है .धर्म हो या संस्कृति इसके अनेक रंग है. हर चीज ने उसे घेर रखा है.मनमानी करना इनका जन्मसिद्ध अधिकार-सा बन गया है.दूसरे चाहे मरे या जिए कोई लेना देना नहीं है.

राघवेन्द्र प्रपन्न की 'कूप में भंग' एक ऐसी कहानी है जिसमें हिन्दू और मुस्लमान के बीच जानबूझकर सम्प्रदायिकता की भावना फैलाई जाने का काम छोटे बच्चों के माध्यम से किया जाता है . जैसे - "मित्र की बच्ची ने अपने थैले की आखिरी चीज निकाली और उसे जमीन पर टिका दिया. खेलते हुए बच्ची उस आखिरी चीज को धीराने लगी, 'खाता नहीं। जब देखो खेल! खेल! खेल! खाने का कुछ होश नहीं रहता. अभी भी नखरा। ठीक से खाओ नहीं तो कनेठी देकर एक झन्नाटेदार थप्पड़ दूंगी सवं अकल ठिकाने पर जा लगेगी. देखो! कितने कमजोर हो गए हो। नहीं मानोगे? नहीं सुधरोगे? सुनता नहीं?' कहते-कहते ही बच्ची लगी उसे झपड़ियाने लगी.हर बार वह लुढ़कता रहा और बच्ची हर बार उसे बिठा-बिठा कर पीटती रही. एक कड़कती आवाज से उसका ध्यान टूटा. एक अंकल चिल्ला रहे थे, 'अब पता चला तुम्हारे मां-बाप क्या-क्या सिखाते हैं तुम्हें। तभी तो... दूसरे कुछ और कह रहे थे, तीसरे कुछ और ही. फिर उसे कुछ भी सुनाई नहीं पड़ा. उसकी आंखें केवल फटीं थीं. शोरगुल सुनकर लड़की के माता-पिता अब्दुल और सबीना वहा पहुंच गए. उन्हें देखते ही कुछ लोग उनसे जूझ पड़े. उन्हें कुछ समझ नहीं आ रहा था.

इसी बीच उसकी नजर बेटी के पास जमीन पर पड़ी एक चीज पर जा टिकी. अचानक करंट-सा लगा. 'यह कहां से आई तुम्हारे पास?' तरह-तरह के विचार अब्दुल के दिमाग में चकरघिन्नी काटने लगे. कहीं सुमित ने जानबूझकर तो ऐसा नहीं किया... हो भी सकता है... माहौल कुछ अजीब-सा ही चल रहा है. किसी का कुछ पता नहीं. नहीं, कम-से-कम सुमित से तो ऐसी उम्मीद नहीं की जा सकती. शायद कोई करियर का लाम लेने के लिए... उनके साथी इस सीढ़ी पर चढ़कर आगे बढ़ चुके हैं, पर क्या उनके जैसा आदमी भी!"

'आप सीधे-साधे व्यक्ति लगते रहे हैं. आगे से ध्यान रखिएगा. फिर कभी...बाप ने झट से बेटी सकीला का हाथ पकड़ घर की ओर लपका, एक बीते की ऊंचाई वाले, घोटाधारी, मिट्टी के हनुमान, आसपास पसरा सन्नाटा झांकने के लिए अकेले छूट गए थे."३ कहना न होगा कि न चाहते हुए भी इस तरह वातावरण बिगाड़ने का काम सुमित जैसे लोग जानबूझकर करते है.

वर्तमान समय में ऐसी अनेक कहानियाँ लिखी गई हैं जो परिवार की छोटी-छोटी चीजों को लेकर चित्रित हुई हैं .चित्रा मुद्गल की कहानी 'लाक्षागृह' चालीस साल की रेल्वे में नौकरी करनेवाली सुनीता की कहानी है जिसकी शादी असुंदरता के कारण नहीं हो पाती है.सभी बहनों और भाई की शादी के बाद भी उसे कोई पसंद नहीं करता था.रेल्वे में तबादले पर आए हिंदी अफ़सर सिन्हा उससे इसलिए प्रेम का नाटक करते हुए शादी का प्रस्ताव देता है कि मुंबई जैसे महानगर में वह घर ले सके और अपनी विधवा माँ और मौसी को ला सके.भाई और बहन की पढाई का खर्चा वह कर सके.सुनीता को जब यह सच्चाई पता चलती है तो वह नौकरी का त्यागपत्र देकर चाली के अपंग देवेंद्र से शादी की बात मान लेती है.परंतु देवेंद्र की सगाई हो चुकी है यह बात माँ जानती है मगर चुप रहती है.४ कहानी का अंत एक ऐसी चुनौती को लेकर आता है जो आजकल की लडकियों की आम समस्या बन चुकी है.जीवन भर सुलगना सुनीता जैसी लडकियों की नियती बन गई है. समय पर शादी न होना यह एक सामाजिक समस्या बन चुकी है यह कहें तो अतिशयोक्ति न होगी.

मधु कांकरिया की कहानी 'दाखिला' कहानी में ऐसे ही एक नौकरीपेशा तथा परित्यक्ता स्त्री की कहानी है जो कालेज में नौकरी कराती है और अपने छोटे बच्चे के दाखिला हेतु सिंगल पालक होने के कारण अनेक स्थिति से गुजरती है.अपने भाई को बच्चे का पिता बनाकर ले जाना इसमें से एक है. स्कूल से रिग्रेट लेटर आने के बाद इन्टरव्यू के लिए समय निकालना हर बार निराश हाथ लगना,आज के वर्तमान अभिभावक के लिए चुनौती-सा बन गया है. इंटरनेशनल स्कूल में दाखिला मिल जाना बहुत बड़ी उपलब्धि मानी जाती है. बच्चा एकदम सच्चा है.कहानी के अंत में अपनी माँ से किसी भी झूठ का सहारा न लेने की सलाह देता है.५ यह एक नई उम्मीद की तरह लगता है.पति पत्नी के बीच झगड़ा और मन मुटाव आम बात हो गई.तलाक़ की स्थिति पैदा हो जाना सहज बन गया है.ऐसे में यह समस्या समकालीन कहानी में बड़े पैमाने पर मिलती है.

'दाखिला'कहानी एक साथ कई प्रसंगों को साथ लेकर चलती है, फिर भी इस कहानी का प्रमुख स्वर एक ऐसी स्त्री की स्वतंत्र सत्ता पर उठती

उँगलियों को निशाना बनाता है, जो पति द्वारा परित्यक्त कर दी गई है। कहानी की नायिका अपने बेटे का दाख़िला पब्लिक स्कूल में चाहती है, लेकिन बार-बार उसे केवल इसी आधार पर असफलता मिलती है कि दाखिले के समय उसके साथ उसके पति यानी बच्चे के पिता नहीं हैं। इस कहानी में स्त्री के अकेले रहने की चुनौती के साथ –साथ शिक्षा व्यवस्था पर भी प्रश्नचिन्हित करती है, जिसके चलते बच्चे अपना बचपन खो रहे हैं। स्कूल बैग का वज़न है, होम वर्क का दबाव है अर्थात शिक्षा व्यावहारिक रूप से सकारात्मक नहीं है। कहानी का उत्कर्ष कथा नायिका का मनोबल दर्शाता है, जिसमें उसे अपने बेटे से ही दिशा मिलती है। वह इन्टरव्यू के ही समय स्कूल के प्रधानाचार्य से स्पष्ट कह देती है कि बच्चे के पिता उसके साथ नहीं रहते। संवेदना के स्तर पर कहानी का कथ्य स्त्री के मनोबल का विस्तार करता है।आज का युग ही एसा बन गया है कि वह अपनी जिम्मेदारी का वहन खुद उठाकर सारी चुनौतियो का सामना कर रही है.

निष्कर्ष:

अंत में यह हम यह कह सकते हैं कि परिवार को लेकर हो या समाज को लेकर हो, देश में या विश्व के धरातल पर हो. आज समाज और साहित्य में किसी प्रकार की संकीर्णता,संकुचितता, पक्षपात, घृणा, जातीयता और सांप्रदायिकता को निकाल बाहर करना होगा। रचनाकार चाहे तो समाज की दिशा बदल सकता है.मनुष्य की सोच को बदलने की ताकत लेखक में होती है.मानवीय भूमिका बदलने की जरुरत है.हम यह न सोचे कि सामने वाले ने मेरे लिए क्या किया है हम यह सोचे कि मै क्या कर सकता हू. जिससे सर्वत्र प्रेम, सौहार्द और शांति का वातावरण स्थापित हो जाए। यह जरुर है कि आज की बदलती दुनिया ने हमारे सोच को बदल कर रख दिया है. खुद से हम पहल करें तो जरुर परिवर्तन संभव है.हम केवल इतना सोचे कि मनुष्य होने के नाते हमें मनुष्य के लिए जीना है.दु ष्यंत के शब्दों में कहें तो-मै अपने जीवन को सुंदर बनाने के लिए जीऊंगा अथवा औरों के जीवन को सुंदर बनाने के लिए मरूँगा. जीऊंगा या मरूँगा-बेहतर जीवन के लिए ही.

संदर्भ:

१ संजय सहाय,हंस ,दिसंबर २०२३,पृ.९८

२ . संजय सहाय,हंस ,जून २०२२ ,पृ.६२

3 . संजय सहाय,हंस , नवंबर २०२३,, पृ.७६

४. महिला: कहानी और कविता,संपा.प्रो.जयमोहन एम.एस. पृ.७०

५ . महिला: कहानी और कविता, संपा.प्रो.जयमोहन एम.एस. ७८